अभिधामूलक ध्वनि

एम्.ए – II सेमेस्टर

डॉ उमा शर्मा
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
एन.ए.एस डिग्री कॉलेज, मेरठ

ॐ
भगवती सरस्वती नमः

अभिधामूलक ध्वनि (विवक्षितान्यपरवाच्य)

जिस काव्य में वाच्यार्थ प्रकरण की दृष्टि से अन्वय-योग्य
होने के कारण विवक्षित होता है अथवा तात्पर्य का विषय
होते हुए भी वह अपने से अधिक रमणीय व्यङ्ग्यार्थ
की प्रतीति कराने हेतु अपने स्वरूप को गौण बना देता है,
व्यङ्ग्यपरक हो जाता है वह विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि
काव्य में परिगणित होता है। यह ध्वनि
अभिधावृत्ति पर आश्रित है। इसमें वाच्यार्थ-बोध
के पश्चात ही व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है। इसे
विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि कहते हैं। विवक्षितान्यपरवाच्य का
अर्थ है जिसमें वाच्यार्थ विवक्षित होने पर भी अन्यपरक
अर्थात व्यङ्ग्यनिष्ठ होता है आचार्य मम्मट ने उक्त ध्वनि
का स्वरूप अधोलिखित सूत्र द्वारा निर्दिष्ट किया है—
"विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः"
अर्थात जिस ध्वनि में वाच्यार्थ अपने स्वरूप से अन्वय-
योग्य होता हुआ (विवक्षितम्) भी (च) अन्यपर अर्थात
व्यङ्ग्यार्थपरक (व्यङ्ग्यनिष्ठ) होता है, वही दूसरी अर्थात
विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि है। यहाँ व्यङ्ग्यार्थ ही रमणीय
होता है, जिसकी प्रतीति वाच्यार्थ-साध्य होती है अर्थात
उसकी प्रतीति का माध्यम वाच्यार्थ होता है।
जिस काव्य में ध्वनि का यह स्वरूप होता है
वहाँ व्यङ्ग्य अर्थात ध्वन्यात्मकता अभिधावृत्ति के माध्यम
से होती है। वहाँ अभिधामूलक व्यङ्ग्य की प्रधानता
होती है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रथमतः
अभिधावृत्ति द्वारा वाच्यार्थ बोध होता है तत्पश्चात

अभिधामूलक व्यञ्जना द्वारा सहृदयमात्र वेद्य (अर्थात् जिसको केवल सहृदय सामाजिक ही समझ सकते हैं) एक विलक्षण अर्थ की प्रतीति हुआ करती है। यही कारण है कि इसको अभिधामूलक ध्वनि भी कहा जाता है।

आ० मम्मट ने -"कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमः परः" सूत्र के माध्यम से इसके दो भेद किए हैं- 1- अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि

2- लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि

प्रथम प्रकारीय ध्वनि को एक दृष्टान्त के माध्यम से इसप्रकार समझा जा सकता है- जिस प्रकार यदि किसी तीक्ष्ण सूचिका आदि से शतकमलपत्रों को बेधा जाता है तो कौन पत्र पहले तथा कौन बाद में बेधा गया इसका क्रम ज्ञात नहीं हो पाता उसी प्रकार उक्त ध्वनि में व्यञ्जक (वाच्यार्थ) और व्यङ्ग्यार्थ का क्रम परिलक्षित नहीं होता।

ग्रन्थकार ने स्पष्ट करते हुए कहा है- "न खलु विभावानुभावव्यभिचारिण एव रसः, अपितु रसस्तैरित्यस्ति क्रमः" स तु लाघवान्न दृश्यते अर्थात् विभाव अनुभाव व्यञ्जक होते हैं तथा रसादि व्यङ्ग्य होते हैं। रसाभिव्यक्ति के साधन होने के कारण होने से विभावादि पूर्वकाल में होंगे तथा रसाभिव्यक्ति पश्चाद्भावी होती है, अतः पौर्वापर्य के कारण क्रम अवश्य होगा किन्तु रसौद्र्क के चमत्कार के कारण रसाप्लुत चित्त सहृदय सामाजिक कारण एवं कार्य के उस पौर्वापर्य का अनुभव नहीं कर पाते।

इसके अन्तर्गत रस, भाव, रसाभास, भावाभास भावोदय, भावसन्धि एवं भावशबलता का भी समावेश होता है,

रसभावतदाभासभावशान्त्यादिरक्रमः।
भिन्नो रसश्च रसाद्यलङ्कारादलङ्कार्यतया स्थितः॥

संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि - संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि से तात्पर्य यह है कि जहाँ पर वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति में पूर्व एवं अपर क्रम की उपस्थिति हो अर्थात् प्रथम क्षण में वाच्यार्थ का ज्ञान हो, तदनन्तर दूसरे क्षण में व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती हो तो उसे संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि कहा जाता है, इसके प्रमुख रूप से तीन भेद होते हैं—

1- शब्द-शक्ति-उद्भव ध्वनि
2- अर्थ-शक्ति-उद्भव ध्वनि
3- शब्दार्थ-उभय शक्ति-उद्भव ध्वनि

वस्तुतः ध्वनिसम्प्रदाय का उदय भारतीय काव्यशास्त्र के क्षेत्र में युगान्तकारी है। इस सिद्धान्त के आदि प्रणेता आनन्दवर्धन हैं, पोषक अभिनवगुप्त एवं प्रतिष्ठापक आचार्य मम्मट हैं। ध्वनि-सिद्धान्त की उद्भावना और प्रवर्तना आनन्दवर्धन की अपनी मौलिक उपलब्धि है। आ० आनन्दवर्धन ने चिरन्तन कवि वाल्मीकि, व्यास तथा कालिदासादि कवियों के काव्य-तत्त्व का अवलोकन करके उसे काव्य का प्रधान तत्त्व स्वीकार किया है।

साथ ही काव्य की आत्मा के पद पर प्रतिष्ठित किया है।
यथा -

"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैः यः समाम्नात पूर्वः"

उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि आनन्दवर्धन से पहले ही ध्वनि की विवेचना हो चुकी थी। आनन्दवर्धन के पश्चात् आचार्य अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक की प्रसिद्ध टीका ध्वन्यालोक-लोचन लिखकर ध्वनि-सिद्धान्त को पुष्ट किया है। अभिनवगुप्त रसवादी थे। अतः उन्होंने रस के कारण ही ध्वनि को महत्ता प्रदान की है। उनके अनुसार रसादे की प्रतीति व्यङ्ग्य है तथा रस का महत्व व्यञ्जना शब्द शक्ति के द्वारा ही हो सकता है आ० आनन्दवर्धन ने ध्वनि को —

1- वस्तुध्वनि
2- अलङ्कारध्वनि एवम्
3- रसध्वनि के रूप में निरूपित किया है परन्तु अभिनव गुप्त ने इससे भी आगे बढ़कर घोषणा की है कि काव्य, रस के द्वारा ही जीवित रह सकता है। उन्होंने बताया कि वस्तुध्वनि एवम् अलङ्कारध्वनि भी वस्तुतः रस का ही बोध कराती है।

जहाँ आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्त का महिमभट्ट, कुन्तक, धनिक, धनञ्जय, आदि आचार्यों ने विरोध किया है वहीं आ० मम्मट ने अपने तर्कों से ध्वनि-विरोधियों की मान्यता का जोरदार खण्डन किया है। मम्मट मूलतः ध्वनिवादी हैं। उन्होंने वैयाकरणों से ध्वनि शब्द को ग्रहण कर उसकी काव्यशास्त्रीय मौलिक विवेचना की। वस्तुतः उन्होंने रस और ध्वनि में अन्तःसम्बन्ध स्थापित किया। आ० मम्मट ने रस की सरस विवेचना की। उनके अनुसार रस किसी भी दशा में वाच्य नहीं होता। विभावादि की उचित योजना करने पर ही उसकी प्रतीति होती है। अतः रस को काव्य की आत्मा मानना भी ध्वनि का पोषण है।

इसीलिए अभिनव गुप्त की मान्यता है- कि रस ही काव्य की आत्मा है। वस्तु और अलङ्कार ध्वनि रस में समाविष्ट होकर ही रहते हैं। तदनन्तर आ० मम्मट ने भी ध्वनि-सिद्धान्त को सुदृढता एवं स्थिरता प्रदान की है। फलस्वरूप उन्हें ध्वनि-प्रस्थापनाचार्य कहा जाता है।

इस प्रकार ध्वनि-भेदों का रमणीय विवेचन प्रस्तुत करते हुए आ० मम्मट ने ध्वनि-तत्त्व को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठापित किया है।